भारत में केन्द्र–राज्य संबंध

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्र एवं राज्यों के बीच संबंधों के कई आयाम हैं जैसे – राजनीतिक संबंध, आर्थिक संबंध तथा कार्यपालीकीय संबंध। प्रस्तुत खण्ड में हम राजनीतिक संबंधों का विवेचन करेंगे।

केन्द्र–राज्य राजनीतिक संबंध

पृष्ठभूमि

केन्द्र–राज्य राजनीतिक संबंधों के विवेचन के चार प्रमुख आधार हैं – पहला, भारतीय संघीय व्यवस्था की विशिष्टताएं; दूसरा, संवैधानिक व्यवस्था; तीसरा, विधायी एवं कार्यपालीकीय संबंध तथा चौथा, राजनीतिक दलीय व्यवस्था। भारतीय संघीय व्यवस्था संघवाद का आदर्श नहीं है अपितु इसमें एकात्मकता के तत्व प्रबल हैं। ऐसे में केन्द्र राज्य संबंध में केन्द्र का वर्चस्व रहना स्वाभाविक है। भारतीय संविधान में ऐसे प्रावधान प्रबल हैं जो केन्द्र को अधिक शक्तियां प्रदान करते हैं। जहांतक विधायी संबंधों का प्रश्न है वह संवैधानिक प्रावधानों के तहत ही निर्धारित होते हैं तथा विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल की विवेकी शक्तियां हावी होती हैं। राजनीतिक दलों के कारण भी केन्द्र–राज्य संबंध निर्धारित होते हैं। खासकर 1989 के बाद गठबंधन की राजनीति ने केन्द्र राज्य राजनीतिक संबंधों को निर्धारित किया है। राजनीतिक दलों की समरूपता की स्थिति में मधुर संबंध तथा इसके विपरित कटु संबंध। केन्द्र राज्य संबंधों को निम्न विंदुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **संघीय व्यवस्था की प्रकृति** – तत्कालीन परिस्थितियों ने हमारे संविधान निर्माताओं को शक्तिशाली केन्द्र की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। के.सी.व्हीयर ने इसे अर्ध–संघ (quasi federal system) की संज्ञाा दी और कहा कि "India is a unitary State with subsidiary federal principles rather than a federal State with subsidiary unitary principles" । सर्वोच्च न्यायालय ने भी 1970 की दशक में कहा कि भारतीय संघ उभयचर (amphibian) प्रकृति का है जो कभी एकात्मक तो कभी संघीय हो जाता है। संविधान सभा में बिहार के श्रीकृष्ण सिन्हा ने जब कहा कि India must have a centralized republic तब डॉ. अम्बेदकर ने भी कहा कि व्यक्तिगत तौर पर वे मजबूत केन्द्र के पक्षधर हैं। इसी धारणा के अनुरूप भारतीय संविधान में प्रावधान किये गये। भारतीय संघ के गठन के समय की परिस्थितियां ऐसी थी जिसमें देशी रीयासतों में अपकेन्द्री (centripetal) प्रवृति थी। 560 से अधिक छोटे बड़े रजवाड़े थे जो इस अवसर में स्वतंत्र राष्ट्र बनने की इच्छा रखते थे। लगभग सभी ने भारत में विलय को स्वीकार कर लिया परन्तु जुनागढ़, गोवा तथा हैदराबाद ने नहीं स्वीकार किया था। ऐसी स्थिति में भविष्य के लिए केन्द्र का सशक्त होना आवश्यक था। भारत में भौगोलिक, सांस्कृतिक, भाषायी तथा आर्थिक विषमताओं के कारण भी समस्त भारत को अखण्ड रखने की आवश्यकता थी। प्रारंभ के बीस सालों तक राजनीति में संघवाद को लेकर कोई विवाद नहीं हुआ परन्तु 1970 के दशक में राज्यों द्वारा स्वायतता की मांग उठी जिसके लिए पी.भी.राजमन्नार समिति का गठन भी हुआ। 1980 के दशक में केन्द्र राज्य संबंधों पर सरकारिया आयोग का गठन हुआ जिसने अपने रिपोर्ट में कहा कि मुख्य रूपसे केन्द्र राज्य

विधायी, संबंध, राज्यपाल की भूमिका तथा अनु. 356 में परिवर्तन की आवश्यकता नहीं परन्तु अनुशंसा की कि समवर्ती सुची के विषयों पर विधायन तथा राज्यपाल की नियुक्ति में राज्यों से सहमति ली जाय तथा राज्यपाल के मामले में लोकसभा अध्यक्ष एवं उपराष्ट्रपति की सलाह ली जानी चाहिए परन्तु यह लागु नहीं हुआ। पुनः 2007 में पुंची कमीशन बना जिसने आपात्काल को स्थानीय स्तर पर करने, केन्द्रीय बलों की तैनाती पर घटनोत्तर स्वीकृति, चुनावपूर्व गठबंधन को ही मान्यता, राज्यपाल की नियुक्ति में मुख्यमंत्री की सहमति एवं इस पद पर सक्रिय राजनीति के व्यक्ति को राज्यपाल पद पर नहीं लाया जाय तथा उनका कार्यकाल सुनिश्चित हो यानि वो अपने पुरे कार्यकाल तक कार्य करें।

2. **संवैधानिक प्रावधान** – केन्द्र राजय संबंधों को हमारे संविधान के प्रावधान निर्धारित करते हैं। प्रथम अनुच्छेद में ही लिखा गया है कि ''India that is Bharat shall be the union of states'' यानि यह राज्यों का संघ है संघवादी राज्य नहीं है। संघीय व्यवस्थाओं की तरह केन्द्र और राज्यों के बीच कार्यों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। संविधान की सातवीं अनुसुची में केन्द्रीय सुची जिसमें 99 विषय, राज्य सुची में 61 विषय तथा समवर्ती सुची में 47 विषय हैं। संविधान के अनुच्छेद 256 से 258 तथा 352 से 360 के प्रावधानों से केन्द्र शक्तिशाली बन जाता है। अनु. 256 के अनुसार राज्य सरकार की बाध्यता है कि संसद के कानून को मान्यता दे। अनु. 257 में राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करेगा कि केन्द्रीय कार्यपालिका को बाधा नहीं पहुंचे। 258 में राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह राज्य के किसी अधिकारी को कोई कार्य सौंप सके। 352 के तहत पुरे देश में आपत्काल की उद्घोषणा की जा सकती है तथा जिसके तहत राज्यों को केन्द्र का निदेश मानना बाध्यता होगी। 355 एवं 356 के तहत राज्य की सरकार को वरखास्त कर राष्ट्रपति शासन लगाया जा सकता है। इस प्रकार संवैधानिक प्रावधान ही ऐसे हैं कि सामान्यतः राज्य को अपने प्रशासनिक कार्यों में पूर्ण स्वतंत्रता नहीं है और केन्द्र की स्थिति अत्यंत मजबुत है।

ऐसी बात नहीं कि संवैधानिक प्रावधानों में केवल केन्द्र की प्रबल शक्तियों के प्रावधान हैं अपितु केन्द्र राज्य के बीच समन्वय स्थापित करने वाल भी प्रावधान है। उदाहरणाथ – अनुच्छेद 261 के अनुसार भारत के राज्य क्षेत्रों में संघ की सार्वजनिक अभिलेख और न्यायिक कार्यवाही को पूर्णमान्यता दी जाएगी, अनुच्छेद 263 के तहत राज्यों में पारस्परिक सहयोग बढ़ाने के लिए राज्यों के विवादों का परीक्षण के लिए राष्ट्रपति अंतर्राज्यीय परिषद कर सकते हैं और ऐसा 1990 में हुआ जो आज तक कार्यरत है। इसके अलावा क्षेत्रीय परिषदों (Zonal/Regional Councils) का गठन भी किया जाता है।

3. **विधायी संबंध** – उपर हम चर्चा कर चुके हैं कि केन्द्र और राज्यों के बीच कार्यों बटवारा सातवीं अनुसूची में किया गया है। केन्द्रीय सुची में प्रतिरक्षा, विदेश संबंध, मुद्रा, संचार, और वित्तीय विषय प्रमुख हैं वहीं राज्य सुची में राज्य की कानून व्यवस्थाए स्वास्थ्य, प्रशासन आदि विशय प्रमुख हैं। समवर्ती सुची के विषयों पर दोनो ही कानून बना सकते हैं परन्तु उनमें टकराव होने पर केन्द्र के कानून मान्य होंगे। उल्लेखनीय है कि राज्य कोई ऐसा कानून नहीं बनाएगा जो केन्द्रीय कानून के विरूद्ध हों साथ ही अवशिष्ट विषयों पर भी केन्द्र ही कानून बनाएगा। अनु. 31(1) के अनुसार राज्य विधायिका निजी संपत्ति का अधिग्रहण संबंधी कानून बना सकती है कर सकती है परन्तु वह अनु. 14 और 19 के उलंघन में नहो। अन. 31 ब के तहत बनी 9वीं अनुसूचि में राज्य का कानून भी डाला जा सकता है जिसपर न्यायिक

पुनर्विलोकन नहीं होगा। अनु. 200 के अनुसार राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि वह किसी विधेयक को राष्ट्रपति की सहमति के लिए रोक सकता है। अनु. 288 (2) के अनुसार केन्द्रीय अधिकरणों पर जल एवं विद्युत संबंधी कर लगाने का राज्य को बिना राष्ट्रपति स्वीकृति के अधिकार नहीं होगा। इसके अलावा आपात् काल में राज्य सरकार के बजट को भी वोट ऑन एकाउन्ट को संसद से पारित कराना पड़ता है। इस प्रकार राज्यों को विधायी कार्यों में भी केन्द्र की स्थिति मजबुत है।

4- **कार्यपालीकीय संबंध –** राज्य के कार्यपालीकीय शक्तियों पर केन्द्र का हस्तक्षेप निम्न प्रावधानों के तहत हो सकता हैः– जैसे अनु. 256 के अनुसार राज्य की कार्यपालीकीय शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग होगा कि संसद द्वारा पारित विधियों को बाधा नहीं आये। उसी प्रकार अनु 257 के तहत कुछ मामलों में राज्य पर केन्द्र का नियंत्रण होता है जैसे राज्य की कार्यपालिका का कोई भी कार्य केन्द्रीय कार्यपालिका के साथ संघर्ष न करता हो। 258 (2) के तहत केन्द्र राज्यों की अनुमति के बिना केन्द्रीय सुरक्षा बल तैनात कर सकता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अखिल भारतीय सेवाएं केन्द्र को राज्य पर नियंत्रण का अवसर देती हैं। अनु. 262 के तहत केन्द्र अंतर्राज्यीय जल विवाद पर संसद विधि का निर्माण कर सकती है तथा अंतर्राज्यीय परिषद् का निर्माण कर इनके विवाद को समाप्त कर सकती है। विगत कुछ दिनों पहले पश्चिम बंगाल सरकार से केन्द्र ने राज्य में कानून व्यवस्था के प्रश्न पर पर केन्द्र ने रिपोर्ट मांगा था जबकि यह पूर्णतः राज्य सुची का विषय है। केन्द्र और राज्यों के प्रशासनिक संबंधों को प्रभावित करने वाले अन्य कई कारक ऐसे भी होते हैं जो संविधान में वर्णित नहीं हैं जैसे विभिनन निकायों या सम्मेलनों आदि के रूप में विद्यमान होते हैं। उदाहरण के तौर पर ऐसे सलाहकारी निकाय हैं जो केन्द्र तथा राज्यों के समन्वय को बढ़ाने का प्रयास करते हैं। ऐसे निकायों के अध्यक्ष केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और राज्य सदस्य की हैसियत से रहते हैं जैसे राष्ट्रीय विकास परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, क्षेत्रीय परिषद् आदि।

5- **दलीय व्यवस्था –** उपर हमने देखा कि संवैधानिक प्रावधान एवं भारतीय संघ की प्रकृति इस प्रकार है कि राज्यों पर जिम्मेवारिया तो दी गई परन्तु उनको पर्याप्त स्वायतता नहीं दी गई। राज्य केन्द्र के अधीन सरकार की तरह बन गये। परन्तु दलीय व्यवस्था ने केन्द्र राज्य संबंधों को दिशा दी है, जो समय समय पर परिवर्तित होते रहे हैं :–

क आजादी के बाद प्रारंभ के बीस वर्षों तक भारतीय राजनीति एकात्मक की तरह थी क्यों कि भारतीय दलीय व्यवस्था रजनी कोठारी के शब्दों में 'एकल प्रभुत्व दलीय व्यवस्था' रही जिसमें राज्य सरकारों के मुख्य मंत्री सहित मंत्रियों के नाम भी दल के आलाकमान ही निर्धारित करते थे।

ख. परन्तु 1967 के आम चुनावों के बाद कई राज्यों में क्षेत्रीय दलों का उद्भव ही नहीं प्रभाव भी बढ़ा। कांग्रेस की जड़े हिल गई और कई बड़े नेता जैसे जयप्रकाश, अच्युत पटबर्द्धन, के कामराज, मोरार जी देशाई आदि कांग्रेस छोड़ चुके थे। राज्यों द्वारा स्वायतता की मांग बढ़ गई। इस बार कांग्रेस का एकाधिपत्य क्षीण हो गया और दलीय आधार पर केन्द्र राज्य संबंध में बदलाव आया, खासकर राज्यों में सरकार गठन मे केन्द्र का हस्तक्षेप समाप्त हुआ परन्तु वैसे राज्यों में जहां समान दल की सत्ता थी वहां केन्द्र प्रभावी था।

ग. भारतीय राजनीति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन 1989 से आया जब केन्द्र में किसी

दल को स्पष्ट बहुमत नहीं आया और केन्द्र में क्षेत्रीय दलों एवं राष्ट्रीय दलों के बीच गठबंधन की राजनीति का प्रदुर्भाव हुआ। अब राष्ट्रीय दलों में अपना औचित्य सिद्ध करने के लिए राज्य स्तरीय घटक दलों को महत्व देने की प्रवृति उभरी । दूसरी ओर भारत में आर्थिक सुधारों के लागु होने के बाद 1991 से अब नियोजित विकास से ज्यादा बाजार आधारित आर्थिक विकास की नीतियों पर बल दिया जाने लगा। इसी क्रम में राज्यों को वास्तविक स्वायतता दी जाने लगी जिसमें राज्यों को अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से ऋण लेने की छुट दी गई। इसी दौरान केन्द्र में उन राज्यों में जहां गैर कांग्रेसी दलों की सत्ता थी उनको गिराने के हथकण्डे प्रयोग मे लाये गये। 1992 में बाबरी मस्जिद के गिराये जाने के लिए जिम्मेवार ठहराते हुए उत्तर प्रदेश के कल्याण सिंह की सरकार कों बरखास्त कर दिया गया साथ ही साथ चार भा.ज.पा. शासित राज्यों की सरकारों को भी बरखास्त कर दिया गया। परन्तु सत्ता में रहे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में अपनी स्वायतता की मांग बढ़ा दी। उसके बाद के चुनावों में भी यही स्थिति बनी रही। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में क्षेत्रीय दलों की शक्ति बढ़ गई और वे केन्द्र के साथ सौदेबाजी की स्थिति में आ गईं। उदाहरणस्वरूप हम आंध्रप्रदेश के राव कांग्रेस की मांग पर केन्द्र तेलांगना राज्य के पुनर्गठन के लिए मजबुर हो गयी। दूसरा उदाहरण 2004 के चुनावों के बाद बिहार के रा.ज.द. के समक्ष भी केन्द्र सरकार को झुकना पड़ा था और मनमाहन सरकार को लालु यादव को रेल मंत्रालय देने के अलावा 6 सदस्यों को मंत्रीमण्डल में शामिल करना पड़ा था। इस प्रकार दक्षिण भारत के दलों के भी दबाव में रही।

घ. 2014 के आम चुनावों के बाद एक बार फिर परिस्थितियां बदली। यद्यपि गठबंधन की रजनीति की समाप्ति नहीं हुई परन्तु मोदी के नेतृत्व में भा.ज.पा. को स्वयं का स्पष्ट बहुमत मिला जिसके चलते क्षेत्रीय दलों की सौदेबाजी की स्थिति नहीं रही। एम.पी.सिंह लिखते हैं कि घटक दलों के मंत्री भी मोदी के पीछे 'meekly fall in line' रहते हैं। भा.ज.पा. द्वारा भी विपक्षी दलों के प्रति वही हथकण्डे अपनाया जा रहा है जो पूर्व में कांग्रस द्वारा अपनाए गये थे।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि केन्द्र राज्य संबंधों में केन्द्र का वर्चस्व है परन्तु राजनीतिक दलों के रूख से इस परिस्थिति में परिवर्तन होता है। किसी एक दल के प्रचण्ड बहुमत एवं राज्य तथा केन्द्र में दलीय समरूपता एकात्मकता के तत्व को प्रबल करती है। वहीं दूसरी ओर केन्द्र एवं राज्य में दलीय बहुरूपता से एवं केन्द्र में किसी एक दल के बहुमत के अभाव में राज्य प्रबल हो जाते हैं।